3. एकवाद
(Monism)

संख्या की दृष्टि से एकवाद उस सिद्धान्त को कहा जाता है जिसके अनुसार मूलतत्त्व की संख्या अनेक या दो नहीं, बल्कि एक है। विश्व की जड़ में केवल एक ही सत्ता है और उसी से सबकी उत्पत्ति हुई है। इन्द्रियों में हमें अनेक पदार्थों की सूचना मिलती है, पर वे वास्तव में मूल नहीं है, क्योंकि वे स्वतन्त्र तथा स्वयंभू नहीं है। वह जो स्वतन्त्र नहीं है, उसें मूल तत्त्व नहीं माना जा सकता। अनेक की तह में एक ही मूल है। अतः मूलतत्त्व अनेक नहीं, एक है।

एकवाद विश्व में व्यवस्था मानता है। विश्व स्वतन्त्र तत्त्वों का योगमात्र नहीं है, बल्कि एक सुव्यवस्थित विश्व है, जिसमें एक का प्रत्येक अंग है।

एकवाद पदार्थों की एकता को मुख्य बतलाता है। अनेकवाद, इसके विपरीत, अनेक को ही सत्य बतलाता है। द्वैतवाद मूलतत्त्वों की संख्या दो मानता है। अतः एकवाद, अनेकवाद और द्वैतवाद, दोनों का विरोध करता है।

(क) एकवाद के विभिन्न रूप

एकवाद के अनुसार मूलतत्त्व की संख्या केवल एक है। अब प्रश्न है कि यदि एक ही परमार्थ या परम तत्त्व है तो उससे अनेक की उत्पत्ति कैसे होती है? एक और अनेक में क्या सम्बन्ध है? इसके सम्बन्ध में एकवादी मत के तीन रूप हो जाते हैं—

कुछ एकवादियों ने अनेक को अतात्त्विक (Unreal) कहा है, कुछ ने उन्हें सापेक्ष रूप में तात्त्विक (Real) माना है और कुछ ने एक और अनेक को विरोधात्मक नहीं, बल्कि सापेक्ष बतलाया है। इस प्रकार एक और अनेक के सम्बन्ध की दृष्टि से एकवाद के तीन रूप हैं।

(i) अमूर्त्त एकवाद *(Abstract Monism)*

एक और अनेक के सम्बन्ध में कुछ दार्शनिकों का मत है कि मूलतत्त्व केवल एक है और अनेक उसका विवर्त्त (Appearance) मात्र है, अनेक सान्त, क्षणिक तथा परिवर्तनशील है। उसे अतात्त्विक बतलाया गया है। इस मत को अमूर्त्त एकवाद (Abstract Monism) कहा जाता है।

इस विचार के अनुसार जो स्वतन्त्र, स्वयंभू तथा असंगतिहीन है, वही यथार्थ (Real) है। विश्व के सभी पदार्थ ससीम, क्षणिक तथा असंगतिपूर्ण हैं। अतः वे यथार्थ नहीं हैं। यथार्थ तो केवल एक परमतत्त्व है। हम अपने अज्ञान के कारण अनेक को तात्त्विक मानने लगते हैं। सत्य का ज्ञान हो जाने पर अनेक भ्रम मालूम होने लगता है। पाश्चात्य दर्शन में परमेनाइडीस, स्पीनोजा आदि के मत और भारतीय दर्शन में शांकर मत इस विचार के समर्थक हैं।

परमेनाइडीस ने अनेक को भ्रम बतलाया है और एक को सत्य। एक शुद्ध सत्ता है, यह निराकार है।

स्पीनोजा ने बतलाया है कि परमतत्त्व एक है। उसे वह द्रव्य कहता है। द्रव्य एक है, स्वयंभू है, स्वतंत्र तथा असीमित है। हमारी कल्पना विश्व के सभी पदार्थों को यथार्थ मान लेती है, पर परमतत्त्व की अपरोक्ष अनुभूति होने पर विभिन्न पदार्थों की अनेकता

Scanned with CamScanner

मिथ्या मालूम होने लगती है। वास्तव में द्रव्य गुण-रहित है। हमारी कल्पना उसमें गुण आरोपित कर देती है।

शांकर मत के अनुसार भी अज्ञान के कारण ही विश्व हमें यथार्थ मालूम होता है। वास्तविक ज्ञान होने पर विश्व माया और तत्त्व केवल एक हो जाता है। अतः उनके अनुसार भी अनेक मिथ्या और एक ही सत्य है।

दोनों विचारों के अनुसार परम तत्त्व केवल एक है और अनेक भ्रम। एक तत्त्व गुण-रहित है, अतः इनके मतों को अमूर्त्त एकवाद (Abstract Monism) कहा जाता है।

समीक्षा

(i) यह मत विश्व की सन्तोषजनक व्याख्या नहीं करता। दर्शन का लक्ष्य है विश्व की व्याख्या करना। अनेक को आभास-मात्र मान लेने से उसकी व्याख्या नहीं हुई।

(ii) यदि अनेक को मिथ्या या माया माना जाय तो प्रश्न होता है कि अनेक के आभास की सृष्टि कैसे और कहाँ होती है? इसका उत्तर इस मत में नहीं मिलता।

(iii) एक के बिना अनेक और अनेक के बिना एक अर्थहीन है। विज्ञान भी अनेक के द्वारा ही एक की व्याख्या करता है। सामान्य नियम विशेष से ही निकलते हैं और विशेष में ही व्यक्तीकरण होता है सामान्य का। पर अनेक के बिना एक की सत्ता मान लेने से एक अर्थहीन हो जाता है।

(ii) सापेक्ष एकवाद *(Conditional Monism)*

दूसरे मत के अनुसार अनेक आभास-मात्र तो नहीं, पर सापेक्ष रूप में ही तत्त्व माने जा सकते हैं। तत्त्व वह हे, जो स्वतंत्र, अनादि तथा अनश्वर हो। विश्व के पदार्थ सीमित होते हैं और वे परतंत्र हैं। उनका आदि और अन्त भी होता है। इसलिए वे पूर्णरूपेण तात्त्विक नहीं है। पर उन्हें अतात्त्विक भी नहीं माना जा सकता। एक पर ही अनेक निर्भर रहते हैं। ईश्वर ने उनकी उत्पत्ति की है। अतः वे भी सापेक्ष रूप से तात्त्विक हैं। इस मत को सापेक्ष एकवाद (Conditional Monism) कहा जाता है।

समीक्षा

(i) इस मत में द्वैतवाद के दोष हैं। अनेक की उत्पत्ति के पहले ईश्वर गुणविहीन हो जाता है और अनेक की उत्पत्ति के बाद उससे सीमित। अतः ऐसे एक को तत्त्व नहीं माना जा सकता।

(ii) ईश्वर सृष्टि के पूर्व अपने में पूर्ण रहता है तब उसे सृष्टि करने की इच्छा क्यों होती है? इच्छा अभाव का सूचक है। यदि ईश्वर को इच्छा होती है तो इसका अर्थ है कि उसमें अभाव है। अतः वह पूर्ण नहीं रह जाता है।

(iii) मूर्त्त एकवाद *(Concrete Monism)*

तीसरे मत के अनुसार अनेक और एक (अनन्त) विरोधात्मक नहीं हैं। दोनों में अन्तरंग सम्बन्ध है। एक के बिना अनेक और अनेक के बिना एक तात्त्विक नहीं है। अनेक का विश्वास एक से ही निरन्तर होता रहता है। इसलिए विश्व की अनेकता में एकता का भाव होता है। एक अनेक के बिना सूना है और अनेक बिना एक के अतात्त्विक (Unreal)। इस मत के अनुसार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। इस मत को मूर्त्त एकवाद (Concrete Monism) कहा जाता है।

Scanned with CamScanner

पाश्चात्य दर्शन में हीगेल इस मत के समर्थक हैं। भारतीय दर्शन में यह विचार रामानुज के मत में मिलता है। रामानुज के अनुसार प्रकृति और पुरुष, दोनों वास्तविक हैं और वे ईश्वर के अंग हैं। उनके मत को विशिष्टाद्वैतवाद कहा जाता है।

मनुष्य अपने अनुभव में एकता और अनेकता, समानता और भेद, दोनों ही पाता है। इसी से समस्या हो जाती है कि मूल और मौलिक कौन है, एक या अनेक? वे एकवादी, जिन्होंने अनेक को अतात्त्विक या कम तात्त्विक बतलाया है एक की व्याख्या में असफल रहे हैं। अनेक को असत्य और आभास-मात्र कह देने से उसकी व्याख्या नहीं हुई। विश्व की विविधता और अनेकता का भी अपना स्थान है। उसके बिना एकता का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। आखिरी मत इसी का समर्थन करता है।

(ख) मूलतत्त्व की प्रकृति की दृष्टि से एकवाद

अब दूसरा प्रश्न यह है कि एकवाद परमतत्त्व की संख्या तो एक बतलाता है, पर उसकी प्रकृति के विषय में दार्शनिकों का क्या मत है? इसके विषय में एकवादियों का समान मत नहीं है। कुछ विचारक उस एक मूलतत्त्व की प्रकृति अनेकात्मक मानते हैं, कुछ दो और कुछ एक। पहले मत को अनेकात्मक एकवाद (Pluralistic Monism), दूसरे को द्वैतवादी एकवाद (Dualistic Monism) और तीसरे को पूर्ण एकवाद (Perfect Monism) कहा जा सकता है।

(i) अनेकात्मक एकवाद

इस सिद्धान्त के अनुसार मूलतत्त्व की संख्या तो एक, पर उसकी प्रकृति भिन्न है। स्पीनोजा का द्रव्य-सम्बन्धी मत इस विचार का उदाहरण है। द्रव्य एक है, पर उसके अनन्त धर्म हैं। धर्म वह है, जो बुद्धि को द्रव्य में प्रतीत होता है। द्रव्य में अनन्त धर्म है, पर उनमें मानव-बुद्धि, सीमित होने के कारण, दो ही को ग्रहण करती है—विचार और विस्तार को। इसका अर्थ यह हुआ कि मूलतत्त्व चेतन और जड़ के अतिरिक्त और धर्मों से भी युक्त है, अतः उसकी प्रकृति अनेक हुई।

(ii) द्वैतवादी एकवाद

इस मत के अनुसार मूलतत्त्व की संख्या एक, पर उसकी प्रकृति में द्वैत है। यह मत रामानुज के दर्शन में मिलता है। उसके अनुसार परमतत्त्व एक है ईश्वर (अद्वैत), पर जड़ और चेतन दोनों ईश्वर के ही अंग हैं। अतः मूलतत्त्व की प्रकृति में द्वैत है।

(iii) एकात्मक एकवाद

इस मत के अनुसार मूलतत्त्व की संख्या और प्रकृति दोनों एक है। प्रकृति को एक माननेवाले परमतत्त्व को केवल जड़ या चेतन या तटस्थ मानते हैं। अतः इसके भी तीन रूप हो जाते हैं—भौतिकवाद (Materialism), अध्यात्मकवाद (Idealism) और तटस्थवाद (Neutralism)।

(i) भौतिकवादी एकवाद *(Materialistic Monism)*

इस मत के अनुसार विव का मूलतत्त्व एक ही प्रकार का है और वह है जड़ द्रव्य। भौतिकवादियों ने चेतन को भी जड़ पदार्थ का ही विशेष रूप कहा है।

Scanned with CamScanner

ग्रीस के विचारक थेल्स, एनेक्जीमेनीस और हेराक्लाइट्स इत्यादि ने एक ही प्रकार का मूलतत्त्व बतलाया है। थेल्स के अनुसार मूलतत्त्व जल है। जल से ही सबकी उत्पत्ति होती है और अन्त में सब उसी अवस्था में पहुँच जाते हैं। एनेक्जीमेनीस ने वायु को मूलतत्त्व कहा है और हेराक्लाइट्स ने अग्नि को।

(ii) अध्यात्मवादी एकवाद ***(Spiritualistic Monism)***

इनके अनुसार भी मूलतत्त्व की संख्या एक है और वह एक ही प्रकार का है। पर इन्होंने मूलतत्त्व को चिदात्मक कहा है।

इसका उदाहरण फिक्टे, शेलिंग, हीगेल, शोपेनहॉर, ग्रीन, ब्रैडले आदि के दर्शन में मिलता है। ये दार्शनिक मूलतत्त्व को एक निरपेक्ष सत्ता मानते हैं। मूलतत्त्व सर्वव्यापक है तथा उसकी प्रकृति चेतन है। मूलतत्त्व साकार है। इसका तात्पर्य यह है कि एक अपने को अनेक में व्यक्त करता है, पर इससे मूलतत्त्व की एकता खंडित नहीं होती। हीगेल ने मूलतत्त्व को बौद्धिक और शोपेनहॉर ने उसे संकल्पात्मक बतलाया है। ब्रैडले उसे सर्वव्यापक अनुभव बतलाते हैं।

भारतीय दर्शन में शांकर मत अध्यात्मकवादी एकवाद का समर्थक है। इसके मत की विवेचना पहले की गई है।

(iii) तटस्थतावादी एकवाद ***(Neutralistic Monism)***

इस मत के अनुसार विश्व का मूलतत्त्व एक है, पर वह न जड़ है, न चेतन। मूलतत्त्व गुणविहीन है। जड़ तथा चेतन दोनों ही समान रूप से उसके विकार हैं। उसी तत्त्व के एक पहलू को जड़ कहा जाता है और दूसरे को चेतन। परमेनाइडीस तथा स्पीनोजा (Spinoza) के विचार इसके उदाहरण माने जा सकते हैं।

परमेनाइडीस ने परमतत्त्व को शुद्ध सत्ता (Pure Being) बतलाया है। परमतत्त्व स्वयंभू, अविनाशी तथा स्थिर है। अनेकता को वह अवास्तविक बतलाया है। अज्ञान से अनेकता का बोध होता है, पर सत्य ज्ञान केवल शुद्ध सत्ता को सत्य बतलाता है। यह सत्ता है न जड़ और न चेतन, बल्कि शुद्ध सत्ता-मात्र।

स्पीनोजा ने भी परमतत्त्व को एक तथा निर्गुण या निर्विशेष कहा है।

इन मतों की आलोचना पहले की गई है।

(ग) एकवाद की समर्थक युक्तियाँ

एकवाद के अनुसार मूलतत्त्व की संख्या केवल एक है। इसके लिए दार्शनिकों ने निम्नलिखित तर्कों का प्रयोग किया है।

वही मूलतत्त्व है, जो किसी अन्य सत्ता पर निर्भर न हो अर्थात् जो स्वयं अपना कारण हो। इस प्रकार का तत्त्व केवल एक ही होगा; क्योंकि यदि वह एक से अधिक हुआ तो एक दूसरे को सीमित कर देगा। सीमित होने से एक दूसरे पर निर्भर रहेगा। पर वह जो निर्भर है, वह मूलतत्त्व नहीं होगा। अतः मूलतत्त्व की संख्या केवल एक है। यह तर्क स्पीनोजा का है।

मूलतत्त्व अवश्य ही सर्वव्यापक होगा; क्योंकि यह सम्पूर्ण विश्व का आधार है। सर्वव्यापक सत्ता एक ही हो सकती है, दो या उससे अधिक नहीं। यदि सत्ता एक से

Scanned with CamScanner

अधिक हो तो एक दूसरी के अन्दर होगी या बाहर। यदि एक दूसरी के अन्दर हो तो एक दूसरी का अंग है। यदि एक दूसरे के बाहर हो तो वह सर्वव्यापक नहीं होगी; क्योंकि एक में दूसरी व्याप्त नहीं है। इसलिए मूलतत्त्व की संख्या केवल एक ही हो सकती है। यह तर्क हीगेल का है।

विश्व में अनेक स्वतन्त्र पदार्थ दीख पड़ते हैं। यदि उनमें सम्बन्ध भी होता है तो बाह्य, ऐसा प्रतीत होता है। यह सम्भव है कि हमें दो पदार्थ बिलकुल असम्बद्ध प्रतीत हों, पर चूँकि हम उनमें कोई सम्बन्ध नहीं देखते, इसलिए उनमें सम्बन्ध है ही नहीं, ऐसा मानना संगत नहीं है। सभी पदार्थ सम्बद्ध हैं और उनमें अन्तरंग सम्बन्ध है, जैसा शरीर और उसके अंगों में सम्बन्ध रहता हे। इससे यह सिद्ध होता है कि विश्व के अनेक पदार्थ स्वतन्त्र नहीं, बल्कि एक के ही अंग हैं।

विज्ञान अणु और परमाणुओं को विश्व की इकाई मानता है। वे सत्य तो हैं, पर क्या वे अन्तिम हैं? किसी भी पदार्थ का स्वरूप दूसरे पदार्थों के सम्बन्ध पर ही निर्भर है। किसी भी पदार्थ का स्वरूप जानने का प्रयत्न करें तो उससे सम्बन्धित पदार्थों का स्वरूप जानना होगा। अतः अनेक, जिन्हें हम स्वतन्त्र मानते हैं वे एक व्यवस्था के अंग हैं। विज्ञान स्वयं अणुओं और परमाणुओं को शक्ति का विकसित रूप मानने लगा है।

विश्व के पदार्थ, जो देखने में स्वतन्त्र प्रतीत होते हैं, उनमें बहुतों की प्रकृति समान होती है। भिन्न-भिन्न मनुष्य हैं, पर सभी एक मानव-वर्ग के व्यक्ति हैं। इसी प्रकार सभी स्वतन्त्र पदार्थ एक सामान्य सत्ता के ही प्रकार हैं। अतः विश्व का मूल-तत्त्व एक है।

कुछ दार्शनिकों ने आपत्ति की है कि एक मूलतत्त्व से दो विरोधात्मक सत्ताओं, अच्छाई और बुराई की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? वास्तव में अच्छाई और बुराई सापेक्ष हैं और बुराई परिवर्तित परिस्थिति में बुराई नहीं रह जाती। यदि साहस से कोई खतरनाक काम भी किया जाय तो उससे डर नहीं, बल्कि सुखात्मक उत्तेजना की अनुभूति होती है। उसी प्रकार मूलतत्त्व में बुराइयों की प्रकृति बदल जाती है और अच्छाई और बुराई विरोधात्मक नहीं रह जाती।

बहुत-से दार्शनिकों ने बतलाया है कि तत्त्व का ज्ञान बुद्धि द्वारा नहीं, बल्कि अपरोक्ष अनुभूति से होता है। अपरोक्ष अनुभूति केवल एक मूलतत्त्व की सूचना देती है। साधना के द्वारा इस प्रकार की अनुभूति सबको प्राप्त हो सकती है।

शंकर ने भी मूलतत्त्व की संख्या एक ही बतलायी है। उसके अनुसार पदार्थों में पारस्परिक भेद है, पर उनमें विद्यमान सत्ता एक है। इस प्रकार विश्व के मूल में एक ही तत्त्व है।

(घ) समीक्षा

मनुष्य को विश्व में अनेक पदार्थों का अनुभव होता है। एक पदार्थ दूसरे से भिन्न प्रतीत होता है। सबकी अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। यहाँ तक कि कोई दो पदार्थ बिलकुल एक नहीं दीखते। यह अनुभव हममें अनेकवाद की नींव डालता है। अनेक की छाप गहरी और सत्य प्रतीत होती है। पर मानव-बुद्धि की प्रवृत्ति एकवादी होती है। यह अनेक में एक और विविधता में एकता की तलाश करता है। अनेक और एक को यह एक व्यवस्थित सूत्र में बाँधने का प्रयत्न करता है। जैसे-जैसे ज्ञान का विकास होता है वैसे-वैसे हम जिन पदार्थों को पहले भिन्न और आकस्मिक माने हुए रहते है, उनमें एकता का

Scanned with CamScanner